SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भारत के ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में पंचायती राजव्यवस्था का योगदान

राजेश कुमार पूर्वे, शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author :
राजेश कुमार पूर्वे, शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 19/08/2020
Revised on : -----
Accepted on : 27/08/2020
Plagiarism : 01% on 19/08/2020

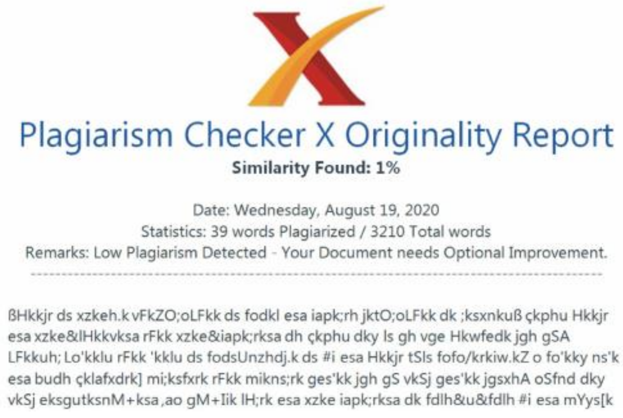

शोध सार :

लोकतंत्र को शासन व्यवस्था का सबसे अच्छा स्वरुप इसलिए माना जाता हैं कि इसमें राजनीतिक फैसलों की प्रक्रिया में सभी नागरिक सीधे या परोक्ष तौर पर शामिल रहते है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को मूर्तरुप देने के लिए देश में आधुनिक पंचायती राज व्यवस्था का जन्म हुआ। इस अवधारणा की मूल मान्यता शासन शक्ति को क्षेत्रीय तथा निम्न स्तरो पर विकसित करना है। ग्रामीण क्षेत्रो में जीवन यापन करने की मूलभूत सुख–सुविधाओं की पूर्ति स्थानीय जन–प्रतिनिधियों के माध्यम से करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ पद्धति हैं। हमारे गाँव में मौजूद मानव संसाधन प्रतिभा का अपार भंडार है। जिसका उपयोग करना आवश्यक है। आज हमारे देश को ऐसे प्रशासनिक ढ़ांचे की आवश्यकता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में ही आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था उपलब्ध कराने में सहायक हो भारतीय ग्रमीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। प्राचीनकाल से ही कृषि का भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक महत्व बना हुआ है। प्रधान व्यवसाय होने के कारण कृषि ग्रामीणों कि आय को सबसे बड़ा स्त्रोत, रोजगार एवं जीवन यापन का प्रमुख साधन है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है। किसी भी राष्ट्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था वहाँ के सम्पूर्ण ग्रामीण समाज के आर्थिक जीवन तथा उनकी आर्थिक क्रियाओं की सम्पादन पद्धति से संबंधित है।

मुख्य शब्द :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पंचायती राज, लोकतंत्र, ग्राम पंचायत, ग्रामीण क्षेत्र, किसान, कृषिक्षेत्र, जन–प्रतिनिधि, रोजगार, कृषि उत्पादन, ग्रामीण समाज।

प्राचीन भारत में ग्राम–सभाओं तथा ग्राम–पंचायतों की प्राचीन काल से ही अहम भूमिका रही है। स्थानीय स्वशासन तथा शासन के विकेन्द्रीकरण के रुप में भारत

जैसे विविधतापूर्ण व विशाल देश में इनकी प्रासंगिकता, उपयोगिता तथा उपादेयता हमेशा रही है और हमेशा रहेगी। वैदिक काल और मोहनजोदड़ों एंव हड़प्पा सभ्यता में ग्राम पंचायतों का किसी–न–किसी रुप में उल्लेख अवश्य मिलता है। वैदिक काल में इसे ग्राम एवं इसके मुखिया को ग्रामणी के नाम से जाना जाता था। बौद्धकालीन ग्राम परिषद में 'ग्राम वृद्ध' सम्मिलित होते थे तथा इनके प्रमुख को ग्राम की भूमि का बन्दोबस्त भुमि सूघार तथा कर संग्रह से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ देखती थी साथ ही गाँव मे शन्ति–सुरक्षा व समृद्धि बनाये रखने के लिए ग्राम–भोजक की सहायता करती थी, जनहित के तमाम अन्य कार्य का सम्पादन भी वही करमी थी। स्मृति ग्रन्थों में भी पंचायत का उल्लेख मिलता है "कौटिल्य" ने ग्राम को एक राजनीतिक इकाई माना है। उनके द्वारा लिखित पुस्तक "अर्थशास्त्र" में ग्राम का प्रमुख 'ग्रामिक' कहलाता था।

चयनित सदस्यों तथा ग्रामवासियों के सहयोग तथा सहभागिता से जनकल्याण संबंधी सार्वजनिक कार्यो के सम्पादन में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। अर्थशास्त्र में ग्राम की एक सार्वजनिक निधि का वर्णन भी किया गया है जिसमें जुर्माने या दण्ड के द्वारा धन आता था, जिसे आकस्मिक आपात परिथितियों अथवा सार्वजनिक हित से जुड़े अन्य कार्यो में उपयोग में लाया जाता था। इसी प्रकार ग्रामिक तथा ग्राम पंचायत संबंधी नीति नियामक, कर्तव्य, दायित्व तथा अधिकार भी सुनिश्चित किए गए थे। जिनकी किसी के द्वारा भी अवहेलना करना दण्डनीय अपराध था। निश्चित रुप से पंचायती राजव्यवस्था वैदिककाल से ही भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का मूल आधार रही है। वास्तव में पंचायती राज प्रणालीं की झलक ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा पुराणों सहित तमाम कई ग्रंथो में स्पष्ट देखने को मिलती है। यदपि इसका उल्लेख अलग–अलग रुपों में किया जाता है। वैदिककाल से लेकर गुप्तकाल में लिखे गए तमाम ग्रंथो में ग्राम सभा, ग्राम समिति, ग्राम परिषद, जनपद, जनपद समिति, महाजनपद समिति, पंचमंडल, तथा राष्ट्र समिति का उल्लेख मिलता है जो वास्तव में पंचायती राज प्रणाली के स्वरुप को ही परिलक्षित करते है।

पंचायत शब्द को कुछ विद्वान संस्कृत के पंचायतन शब्द से जोड़ते है जो देवपुजन के व्यवहार में अधिकांशतः प्रयुक्त होता था, तो कुछ विद्वान इसे पाँच व्यक्तियो के समूह या सभा से जोड़ते है। भारत में ग्राम पंचायत के पंच समूह या पंच परमेश्वर जैसे प्रतिनिधियों की परम्परा भी प्राचीन काल से ही चली आ रही है। पंचों की भूमिका न्याययिक तथा प्रशासकीय कार्यो से लेकर ग्राम के सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए नीति–नियामक बनाने व संचालऩ करने तक मे बेहद अहम थी। पंच तथा मुखिया का चयन ग्रामीण जनता द्वारा की किया जाता था। महाकाव्य काल के रामायण एवं महाभारत में भी ग्रामों का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति के अनुसार ग्राम मुखिया–ग्रामिक, ग्रामीण शासन के प्रति उतरदायी होता था और इसका मुख्य कार्य गाँव के प्रतिनिधियॉ के साथ मिलकर गाँव की सुख–शान्ति, समृद्धि तथा करों के संग्रहण का कार्य करना था। मौर्यकाल आते–आते भारत में पंचायती राज प्रणाली काफी समृद्ध और परिष्कृत हो गई थीं अब प्रत्येक ग्राम सभा को उसकी जरुरतों, हितो एवं सामाजिक–आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों के मुताबिक स्थानीय स्तर पर नीति–नियामक बनाने की काफी हद तक स्वायत्तता प्रदान कर दी गई जो कोटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित है।

बौद्धकाल की 'जातक कथाओं' से पता चलता है कि उस समय में ग्राम का प्रमुख 'योजक' कहलाता था जो ग्राम सभा संगठन में चयनित अन्य सदस्यों एव आम ग्रामीणों की सहभागिता से स्थानीय संचालन नियत्रंण तथा प्रबन्धन करता था। तत्कालीन दौर में ग्राम सभा के प्रमुख कार्य थे – गाँव कि सुरक्षा, शान्ति तथा न्याय व्यवस्था को बनाए रखना, शिक्षा, स्वास्थ्य और पेयजल व्यवस्था देखना, सरायों – मन्दिरों और घाटों का निर्माण तथा कृषि और काश्तकारी से संबंधित नीती–नियामकों का क्रियान्वयन करना इत्यादि। गुप्त साम्राज्य में भी पंचायती राज–व्यवस्था व्यवस्थित, प्रभावी तथा व्यापक स्तर पर लागू थी। गुप्त शासकों द्वारा अपनी शासन व्यवस्था को विभिन्न स्तरों पर विकेन्द्रीकृत किया गया। उन्होंने अपने विशाल साम्राज्य को कई प्रांतों में बाँटा था जिसे 'देश' 'भुक्ति' अथवा 'अवनी' कहा जाता था। 'भुक्ति' का विभाजन जनपदों में किया गया था। 'जनपदों' को विषय में विभाजित किया गया और 'विषय' को ग्राम सभाओं में विभक्त किया गया।

पंचायती राज व्यवस्था की आवश्यकता :

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को मुर्तरुप देने के लिए देश में आधुनिक पंचायती राज व्यवस्था का जन्म हुआ। इस अवधारणा की मूल मान्यता शासन शक्ति को क्षेत्रीय तथा निम्न स्तरों पर विस्तारित करना है। शासन की नीति तथा कार्यक्रमों में सहभागिता तथा क्रियान्वयन आर्थिक संसाधनों का प्रबन्ध तथा बिना उच्च हस्तक्षेप के अपने कार्यो का निर्देशन तथा आयोजन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का मुख्य उदेश्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की मुलभूत सुख–सुविधाओं की पूर्ती स्थानीय जन–प्रतिनिधियों के माध्यम से करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 3 अक्टूबर 1959 को नागौर में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु ने इस योजना का शुभारंभ करते हुए कहा था– स्वतंत्र भारत के ग्रामीण लोगों के हाथो में शासन सत्ता सौंपकर हम विकास के नये आयाम स्थापित कर सकेंगे। राजस्थान के पश्चात् आन्ध्रप्रदेश तथा धीरे–धीरे अन्य सभी राज्यों में यह योजना विभिन्न स्वरुपों में शुरु की गई। बाद में यह अनुभव किया गया कि पंचायती राज व्यवस्थाओं का ढ़ँाचा तथा वित्तीय प्रशासन दोषयुक्त है। इसके लिए अनेक कमेटियों तथा अध्ययन दलों का गठन किया गया। पंचायती राजव्यवस्थाओं को संवेधानिक दर्जा दिया जाना तथा उनकी वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ किया जाना आवश्यक है, ताकि ये संस्थाएँ जन कल्याण की पूर्ति में सक्षम सिद्ध हो सके।

पंचायती राज व्यवस्थाओं को और अधिक सुदृढ़ तथा प्रभावी बनाने के लिए संसद द्वारा 1992 में पारित 73 वें संवैधनिक संशोधन अधिनियम के माध्यम से इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है। संविधान में एक नया अनुच्छेद 243 जोड़ा गया है जो इन संस्थाओं की संवैधानिक मान्यता, देशभर में एकसमान संगठन तथा इनके चुनावों संबंधी ठोस व्यवस्था प्रदान करता है। स्थानीय जनता को अपनी आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं, अपने क्षेत्र की स्थिति एवं सम्भावनाओं की ज्यादा जानकारी होती है। अतः ग्रामीण विकास की योजनाएँ स्थानीय जनता के सहयोग से ही अच्छी तरह बन सकती हैं तथा निर्णय लिये जा सकते है। परिणाम स्वरुप न्यूनतम लागत पर अधिकतम सफलता प्राप्त हो सकती है। हमारे गाँव में मौजूद मानव संसाधन का प्रतिभा का अपार भंडार है जिसका उपयोग करना आज की महती आवश्यकता हैं। आज हमारे देश को ऐसे प्रशासनिक ढाँचे की आवश्यकता हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में ही आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक वातावरण उपलब्ध कराने में सहायक हो। ग्राम पंचायतों के गतिमान पहिए ही देश के ग्रामीण विकास के उपयुक्त साधन सिद्ध हो सकते है। सरकार को योजनाओं का वितरण ग्राम स्तर से करना चाहिए। योजनाओ में उन लोगों को शामिल करना चाहिए जिनके लिए योजनाएँ बनाई जाती है। इसे कार्यरुप में परिणित करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत में, गाँव में रहने वाली जनता के साथ सत्ता का बँटवारा किये जाय। जिसके परिणामस्वरुप एक ऐसी व्यवस्था की खोज का प्रयास किया गया जिसमें राष्ट्र–निर्माण के कार्य में जनतंत्र एक अधिक सक्रिय ढंग से कार्यशील हो सके। इस व्यवस्था पर विचार करने के लिए भारत सरकार ने बलबन्त राय मेहता की अध्यक्षता में 1956 में एक समिति का गठन किया जिसने 1957 में अपनी रिपोर्ट सरकार को दी। इस समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता को अनुभव कर गाँव, खण्ड तथा जिला स्तर पर लोकतांत्रिक प्रशासनिक संस्थाओं की स्थापना की संस्तुति की। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का स्थान अब पंचायती राज ने लिया है।

पंचायती राज व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त :

पंचायती राज व्यवस्था के कुछ मौलिक सिद्धान्त निम्नलिखित है :

- विचारों की स्वतंत्रता ।
- नैतिक बल।
- पारस्परिक प्रेम।
- एकता तथा जन–सहयोग की भावना।
- आचरण व शिष्टता की भावना।
- सामाजिक कर्त्तवय का पालन।
- समानता की भावना।
- अनुशासन बनाये रखने का प्रयत्न।

विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्र के आर्थिक विकास और प्रगति का तब तक कोई मायने नही होता जब तक हम ग्रामीण भारत में रह रहे अल्पसंख्यक लोगों को एक अच्छा और सम्मानजनक जीवन प्रदान करने में सफल नही हो जाते। विगत कुछ वर्षो में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ताकि राष्ट्र अपनी सामर्थ्य को समझ सकें और वह दुनिया के देशों की सूची में एक खुशहाल और वैभवशाली भारत के रुप में उचित स्थान प्राप्त कर सकें। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने कमजोर और असहाय वर्गों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी विकास सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम शुरु किये है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की गति तेज करने के लिए विकास कार्यो हेतु न केवल धन के आवंटन और संसाधन जुटाने को उच्च प्राथमिकता दी गई है बल्कि नये कार्यक्रम शुरु करने और वर्तमान में चल रहे कार्यक्रम के पुनर्गठन को भी प्रमुखता दी गई है। स्थायी विकास सुनिश्चित करने हेतु विकास कार्यो में भागीदारी सुनिश्चित करना और स्थानीय संसाधनों और प्रतिभाओ का पता लगाना जरुरी है। पंचायती राज संस्थाओं के स्तम्भ ग्रामसभा को स्थानीय निकाय की प्रभावी इकाई बनाने और ग्रामीण विकास कार्यक्रमो की योजना और क्रियान्वयन के विकेन्द्रीकरण के लिए उसे एक प्रभावी मंच के रुप में विकसित करने पर जोर दिया गया हैं। ग्रामीण क्षेत्रों मे सरकारी पहल पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्रमुखता दी गई हैं। प्रत्येक वर्ष इन कार्यक्रमों की समीक्षा कर उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के प्रयास किए गये हैं। अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 20 करोड़ आबादी गरीब हैं जिसकी वजह से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की समीक्षा और पुनर्गठन किया गया। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना अप्रैल 1999 में शुरू की गई। इसे एक समग्र स्वरोजगार योजना के रूप में देखा जा रहा हैं। जिसमें ग्रामीण गरीबों को स्वयं सहायता समूह बनाने तथा उनकी क्षमता का निर्माण करने, उन्हें प्रशिक्षण देने, स्लम बस्तियों के क्रिया कलापों की योजनाएँ बनाने, बुनियादी ढाँचा और टेक्नोलॉजी उपलब्ध कराने और विपणन आदि में मदद की जाती हैं। देश में पुनरोत्थान और नवनिर्माण के लिए लाभकारी रोजगार खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभावकारी आधारभूत ढाँचा होना जरूरी हैं।

पंचायती राज व्यवस्था का स्वरुप :

लोकतंत्र को शासन का सबसे अच्छा स्वरुप इसलिए माना जाता है कि इसमें राजनीतिक फैसलो की प्रक्रिया में सभी नागरिक सीधे या परोक्ष तौर पर शामिल रहते है। लेकिन आजादी के समय भारतीय समाज जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, परंपरा और रीति –रिवाज के आधार पर बुरी तरह बंटा हुआ था। समुची व्यवस्था को गिनती के रसूखदार लोगों ने अपनी मुटठी मे कैद कर रखा था। शिक्षा, राजनीतिक चेतना और धन के आभाव मे कमजोर तबको के लोग सियासत से लगभग पूरी तरह अलग थे। इन तबकों में से जो कुछ लोग अपने हक के लिए सामने आते उन्हें ऊंची जातियों और संपन्न वर्गो के जुल्मों का सामना करना पड़ता था। हमारे नेताओं को मालूम था कि इस तरह के निर्माण नही किया जा सकता। एक जीवंत लोकतंत्र के लिए समाज में बदलाव जरुरी था और देश के संविधान को इस दिशा में पहला कदम माना जा सकता है। देश में संविधान के 73वे संशोधन के जरिए लागू तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था अवसरों की समानता और सत्ता के विकेन्द्रीकरण के महात्मा गांधी के सपनों के साकार का ठोस प्रयास है।

इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समेत हर तरह के भेदभाव को मिटाने तथा विकास कार्यक्रमों को बनाने और उन पर अमल में सभी तबको की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए समुचित प्रावधान किए गए है। इस तरह से यह व्यवस्था अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं और समाज के हाशिए पर खड़े अन्य सभी समुदायों के सशक्तीकरण में काफी मददगार साबित हो रही है।

पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद में कमजोर तबकों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को आबादी में उनके अनुपात के बराबर आरक्षण दिया गया है। इस आरक्षण में कम से कम एक तिहाई सीटें इन्हीं समुदायों की महिलाओं के आरक्षित की गई हैं। अन्य पिछड़े तबको के लिए आरक्षण के प्रतिशत का फैसला करने का अधिकार राज्यों को दिया गया है।

पंचायती राज व्यवस्था के तीनों स्तरों पर कम–से–कम एक तिहाई सामान्य सीटें भी महिलाओं के लिए रखी

गई है लेकिन देश के कुल 29 राज्यों में से 17 राज्य इससे आगे बढ़ कर पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर चुके है। उनके इस फैसले से महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण को काफी बल मिला है। भारत अब भी गावों का देश है जहाँ हर 10 में से 7 नागरिक ग्रामीण इलाकों में ही रहते हैं। संविधान के 73वें संशोधन का ग्रामीण भारत में सकारात्मक असर देखा जा सकता है। ज्यादातर राज्यों में पंचायत के चुनाव नियमित तौर पर हो रहे हैं जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों के शक्ति संतुलन में बदलाव आया है। ढाई लाख से ज्यादा ग्राम पंचायतों 6000 पंचायत समितियों और 500 जिला परिषदों के गठन से देश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का विस्तार हुआ है। योजनाओं और कार्यक्रमों को तैयार और लागू करने की प्रकिया में सक्रिय भगीदारी ने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं में एक नया आत्मविश्वास पैदा किया है।

सदियों की अपेक्षा और प्रताड़ना ने उनके अंदर यह धारणा भर दी थी कि वे अपने फैसले खुद करने की काबिलियत नहीं रखते। वे अपनी छोटी–छोटी समस्याओं तक के हल के लिए प्रभावशाली तबको पर निर्भर थे। लेकिन ग्रामीण प्रशासन में भागीदारी ने इन तबकों के हौसलों को मजबूती दी है। कुछ दशक पहले तक समाज के कमजोर तबकों का राजनीति में दखल बेहद कम था। चुनाव लड़ना तो दूर की बात थी। अक्सर उन्हें वोट डालने से भी रोका जाता था। समाज पर बर्चस्व रखने वाली ताकतें उनका सियासी इस्तेमाल करती थी। पंचायती राज व्यवस्था ने उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं को जुबान देकर उन्हें सियासी तौर पर मजबूत बनाया है। पंचायती राज व्यवस्था के तहत सत्ता के विकेंद्रीकरण से गावों की तस्वीर एकदम बदल गई है। पंचायतों को अपना वित्तीय और प्रशासनिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। ग्राम सभाएँ पंचायती राज व्यवस्था में विचार–विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण मंच है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व :

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। प्राचीन काल से ही कृषि सर्वाधिक महत्व बना हुआ है। प्रधान व्यवसाय होने के कारण कृषि ग्रामीणों की आय का सबसे बड़ा स्त्रोत, रोजगार एवं जीवन–यापन का प्रमुख साधन, ग्रामीण उद्योग–धंधों का आधार है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की आधारशीला है। किसी भी राष्ट्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था वहाँ के संपूर्ण ग्रामीण समाज के आर्थिक जीवन तथा उनकी आर्थिक क्रियाओं की संपादन पद्धति से संबंधित है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था किसी देश की ग्रामीण समाज के आर्थिक पहलू से संबंधित होती है। ग्रामीण परिक्षेत्र में उत्पादित की जाने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं उपभोग संबंधी क्रियाएँ होती है। कृषि के साथ–साथ ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योग धंधों, परिवहन, व्यापार एवं विभिन्न प्रकार की सेवाओं आदि का निरूपण होता है। भारत के ग्रामीण समाज में कृषि का इतना अधिक महत्व है कि अन्य ग्रामीण क्रियाएँ कृषि की ही सहायिका हो जाती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था वहाँ के कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्रों पर निर्भर रहती है तथा उसके द्वारा प्रभावित होती है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्रों पर निर्भर करती है। कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्र परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर रहते है और समन्वित रुप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्र अपनी भूमिका निभाते है। कृषि ग्रामीण समाज के लोगों के जीवन का आधार होती है। यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही है। यहाँ के लोगों का जीवन खेती पर निर्भर ही आश्रित है। इसके अतिरिक्त बहुत से लोग कृषि पदार्थो के व्यापार, परिवहन आदि में लगकर अपना जीवन–निर्वाह करते है। कृषि ग्रामीणों की आय का प्रमुख स्त्रोत एवं उनकी आजीविका का प्रमुख साधन होती है। कृषि उत्पादकता एवं उसकी गुणवत्ता ग्रामीण की आय एवं रहन–सहन पर प्रभाव डालती है। उच्च कृषि उत्पादकता ग्रामीण आय एवं जीवन–स्तर में वृद्धि करती है जबकि निम्न उत्पादकता कृषि आय एवं जीवन–स्तर को घटाती है। ग्रामीणों की आय, रोजगार तथा अन्य आर्थिक तत्व कृषि क्षेत्र की गतिविधियों द्वारा मुख्य रुप से प्रभावित होते है।

कृषि क्षेत्र की गतिविधियों द्वारा मुख्य रुप से प्रभावित होते है। कृषि ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिरता एंव अस्थिरता, गतिशीलता एंव प्रगति को निर्धारित करती है। ग्रामीण भारत कृषि की प्रगति पर ही निर्भर है। ग्रामीण भारत में कृषि का सबसे महत्वपूर्ण योगदान देश की विशाल जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध

कराना है। कृषि देश के अनेक छोटे–बड़े उद्योगों का आधार है। महत्वपूर्ण उद्योग पटसन, चीनी, वस्त्र, तेल आदि अपने कच्चे माल की पुर्ति के लिए मुख्यतः कृषि पर ही निर्भर है। अनेक कुटीर उद्योग भी अपने कच्चे माल की पूर्ति के लिए कृषि पर ही निर्भर करते है। कृषि यंत्र बनाने तथा उर्वरकों का उत्पादन करने वाले उद्योग भी प्रत्यक्ष रुप से कृषि व्यवसाय पर निर्भर करते है। देश की औद्योगिक विकास दर को बढाने के लिए कृषि अत्यन्त महत्वपूर्ण भुमिका निभाती है। देश में कृषि उत्पादन में भारी प्रादेशिक अन्तर पाया जाता है। इन प्रादेशिक अन्तरों के कारण रेल, मोटर आदि परिवहन साधनों की आय का काफी बड़ा भाग कृषि उत्पादों को एक स्थान से दुसरे स्थान पर लाने–ले जाने से प्राप्त होता है देश की परिवहन व्यवस्था भी कृषि को प्रभावित करती हैं।

हमारे देश में खाद्यान्न माँग के प्रति आय की लोचशीलता अधिक है। ग्रामीणों की आय का स्तर नीचा है अतः इनेक खाद्यान्न उत्पाढन में उतार चढाव आने से कृषि मुल्यों में भी उतार–चढाव आते है जिनका प्रतिकूल प्रभाव सामान्य मूल्य स्तर पर पड़ता है। कृषि उत्पादन एवं कृषि मूल्यों में गहरा संबंध होता है। भारत के विदेशी व्यापार में कृषि का महत्वपुर्ण स्थान है। कृषि पद्धति गतिशील होती है इसलिए उसमें समय–समय पर सुधार एंव परिवर्त्तन होते रहते है। वैकल्पिक सुधारों एंव नई पद्धतियों का समय–समय पर कृषको को अवगत करने लिए संचारतंत्र का समुचित विकास किया जाना चाहिए। विकास की एक अवस्था में कुछ भौगोलिक क्षेत्रों के लिए जो तकनीक उन्नत एंव आधुनिक समझी जाती है। यह आवश्यक नही है कि विकास की अगली अवस्था में भी वह तकनीक उपयुक्त एवं प्रभावी समक्षी जाएगी।

कृषि की उन्नत तकनीकी एवं पुरानी तकनीकी एक दूसरे के पूरक की तरह प्रचलन में रहती है। अतः आवश्यकता इस बात की होती है कि उनके बीच समुचित समन्वय बनाए रखा जाय। कृषि उत्पादकता में सुधार हेतु कृषि आगतों की किस्म में सुधार होना आवश्यक होता है। शोध कार्यो को फार्म की दशाओं एवं सामाजिक स्वीकार्यता के अनरुप सम्पादित किया जाना चाहिए। शोध में व्यावहारिकता का गुण होना चाहिए। उत्पादन को बढाने के लिए नवीन पद्धतियों एवं पदार्थो की आवश्यकता होती है तथा फसलों की विविधता, पशुओं की उन्नत नस्लों तथा उर्वरक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कार्यक्रम की सफलता कृषकों के प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। कुशल एवं प्रशिक्षित कृषक उपलब्ध संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग का चुनाव कर सकते है। कृषि की नवीनतम तकनीकों, उपकरणो तथा उन्नतशील कृषि आगतों की जानकारी कृषकों को दी जानी चाहिए तथा उन्हे प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जिससे कृषि क्षेत्र में पर्याप्त पूँजी–निर्माण होने लगता है जिसके फलस्वरुप कृषि क्षेत्र में निवेश हेतु आवश्यक पुँजी उपलब्ध रहती है।

अतः कहा जा सकता हैं कि पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से भारतीय शासन व्यवस्था में जो ढाँचागत परिर्वतन हो रहा हैं इसमें देश के ग्रामीण विकास की जो सुखद कल्पना की गई है वह तभी साकार हो सकती हैं जब पिछले 72 वर्षो के अनुभव का लाभ उठाते हुए इसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों एवं बाधाओं का समय पर आकलन कर उन्हें चुनौतियों के रुप में स्वीकार करके सभी व्यावहारिक एवं आवश्यक कदम उठायें जाए। इसके लिए सबल राजनीतिक इच्छा–शक्ति, प्रशासनिक सहयोग, जन–सहभागिता, दृढ़ निश्चय और कठोर अनुशासन का सहारा लिया जाए तो निश्चय ही नवीन पंचायती राजव्यवस्था के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नये आयाम पर पहुँचा कर गाँधीजी के रामराज्य की कल्पना को साकार कर सकते है।

निष्कर्ष :

पंचायती राज से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में गति आई है। ग्रामीण स्तर पर जीवन यापन में सुधार हो रहा है। लोग पंचायती राज व्यवस्था से जुड़कर अपने आर्थिक जीवन को आगे बढ़ा रहे है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रगति को निर्धारित करती है। कृषि देश के अनेक छोटे बड़े उद्योगों का आधार है। देश की औद्योयिक विकास दर को बढ़ाने के लिए कृषि अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वैकल्पिक सुधारो एवं नई पद्धतियों का समय–समय पर कृषकों को अवगत करने के लिए संचार तंत्र का समुचित विकास किया जाना चाहिए। कृषि की उन्न्त तकनीक एवं पुरानी तकनीक एक दूसरे के पूरक की तरह प्रचलन में रहती है अतः आवश्यकता इस बात की होती है कि उनके बीच समुचित समन्वय बनाए रखा जाये। पंचायती राज व्यवस्था के तहत सरकार के द्वारा चलाये जा रहे ग्राम

विकास के कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाये जाने की आवष्यकता है। जिससे हमारे कृषि और कृषक समाज का समुचित विकास हो सके।

संदर्भ सूची :

1. *हमारा संविधान : सुभाष काश्यप, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली।*
2. *कृषि अर्थशास्त्र : शिवभूशण गुप्त, SBPD पब्लिकेशन, आगरा।*
3. *कृषि अर्थशास्त्र : कमलेश बैरवा, मंजू पब्लिकेशन, जयपुर।*
4. *पर्यावरण एवं सामाजिक क्षेत्र का अर्थशास्त्र : जितेन्द्र सिंह, मंजू पब्लिकेशन, जयपुर।*
5. *आर्थिक विचारों का इतिहास : बी0 एस0 यादव, नंदिनी शर्मा, उपासना शर्मा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली।*
6. *व्यष्टि अर्थशास्त्र : अनुपम अग्रवाल, SBPD पब्लिकेशन, आगरा।*
7. *कुरूक्षेत्र के विभिन्न अंक।*
8. *योजना के विभिन्न अंक।*
9. *दैनिक समाचार पत्र।*
10. *प्रतियोगिता दर्पण के विभिन्न अंक।*

****